विद्या विन्दु सिंह के उपन्यासों में चित्रित लोकगीत

निर्देशिका : **डॉ. पिंकी पारीक**

शोधार्थी : **सरिता पारीक**

वनस्थली विद्यापीठ

सारांश –

लोकगीत जनमानस की सहज वृत्ति है। यह वृत्ति वेदों से पूर्व वाचिक परंपरा के रूप में प्रचलित रही है जो मानव मन के प्रत्येक संवेग की रागात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य में यह परंपरा भक्तिकाल में कबीर जायसी से प्रारम्भ होकर आधुनिक साहित्य में भी अपने सुन्दर स्वरूप में देखने को मिलती है। संस्कृति को साहित्य में स्थान देकर सजीव बनाए रखने के प्रयास में आधुनिक लेखकों की वृहद् सूची में डॉ. विद्या बिन्दु सिंह का नाम उभर कर आता है। विद्या जी के उपन्यासों में लोकगीतों (परछन, सोहर, कजली, द्वारचार, लोरी, श्रम) के माध्यम से पात्रों के हर्ष, विषाद, करूणा, प्रेम, पीड़ा आदि मनोभावों का मार्मिक चित्रण हुआ है।

बीजशब्द – रागात्मक, वात्सल्य, संवेग, लोकगीत

मूल आलेख –

लोकगीत जन–मानस की सहज वृत्ति है। भारतीय विचारकों के अनुसार वेदों से पूर्व भारतीय संस्कृति में स्वस्थ, सुदीर्घ वाचिक परंपरा चली आ रही है जो एक संतति से दूसरी संतति में अपने इसी वाचिक स्वरूप में संचारित होती है। जिसे कालान्तर में सुरक्षित एवं संरक्षित करने की दृष्टि से शब्दबद्ध कर लोक साहित्य का सुन्दर स्वरूप दिया गया। लोक साहित्य में विभिन्न विधाओं

का समावेश है, यथा लोकनाट्य, लोककथा, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकगाथा आदि। मानव जीवन में लोक–गीत का विशेष महत्व है।

यह मानव ह्रदय की अनुभूतियों का लयात्मक उपहार है, क्योंकि जब कभी लोक प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो उठे अथवा वेदना की लहरों में डूबने लगे या रोमानी भावों में बहने लगे, वह मन के प्रत्येक संवेग को रागात्मक अभिव्यक्ति देता है। यही रागात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत है।

लोकगीत, लोकसाहित्य के अक्षय स्त्रोत की अमृत बूंदे है, जो लोकमानस के सूखे निर्झर को सींच कर ध्वनित करती है और मन के रसोद्वेग भाव सुमधुर लय में झरने लगते हैं। लोकगीत समय की लंबी यात्रा में युगीन तत्वों को स्वयं में समाविष्ट करते हुए चलते हैं। इनके आलोक में मानव इतिहास को चलचित्र की भाँति देखा जा सकता है।

''लोकगीत सामान्य लोकजीवन की पार्श्व भूमि में अचिन्त्य रूप में अनायास ही फूट पड़ने वाली लयात्मक अभिव्यक्ति है।''[1] लोकगीतों को महात्मा गाँधी ने 'जनता का साहित्य' देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'संस्कृति के मुँह बोलते चित्र, चन्द्र शेखर रेड्डी ने 'ग्रामीण जनता के सुमधुर गीत कहा है।

साहित्य में लोकगीतों की परंपरा भक्तिकाल में कबीर, जायसी एवं आगे चलकर आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिशचन्द्र, देथा, विद्या बिन्दु सिंह की रचनाओं में अपने सुन्दरतम् स्वरूप में देखने को मिलती है। संस्कृति को साहित्य में स्थान देकर संजीव बनाए रखने का कार्य करने वाले आधुनिक लेखकों की वृहद् सूची में विद्या बिन्दु सिंह का नाम उभरकर आता है जो साहित्य के माध्यम से सांस्कृतिक परंपराओं को परिष्कृत करते हुए जीवंत बनाए रखने के लिए साधना कर रही है। विद्या जी को हिन्दी साहित्य विशेषतः अवधि लोक साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विद्या जी ने साहित्य की प्रत्येक विधा पर लेखनी चलाकर साहित्य को समृद्ध किया है।

विद्या जी के कथा–साहित्य के नभ में लोकगीत इन्द्रधनुष के विभिन्न रंगों की छटा की भाँति बिखरे है, जो मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष एवं पात्रों के विभिन्न संवेगों जैसे हर्ष, विषाद, वात्सल्य, करूणा, वेदना, रोमानी प्रेम को दर्शाते हैं। मानव जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक महत्व रखने वाले सोलह संस्कार, मेले, पर्व–त्योहार, ऋतुओं सभी अवसरों पर लोकगीतों के प्रयोग से कथा साहित्य की रोचकता को बढ़ाया है।

लोकगीतों में लोरी का विशेष महत्व होता है। जिसमें संतान के प्रति माँ की ममता व वात्सल्य भाव भरा होता है। रोते बालक को बहलाना हो, थपकी देकर सुलाना हो, दूध–भात खिलाना हो आदि लोरियों के एक–एक शब्द से माँ का प्रेम व वात्सल्य झरता है। अंजना जो स्वयं माँ नहीं बन सकती, लेकिन गोद लिए पुत्र पर स्नेह जल उड़ेलती हुई उसे लोरी सुनाकर पूर्ण वात्सल्य भाव का आनंद लेती हैं।

कब लाल बड़ा कै होई है,

कब बाबा की बगिया जर है।

कब आम धव दिलै अई हैं,

कब आजी क जिय राजु डर हैं।

कब माई क मन हुलसई हैं।

जब लौटि धराँ क अई हैं।

बाबा क लठिया धमि है।[2]

लोरी का भाव है कब उसका लाल बड़ा होगा। बड़ा होकर कब अपने पिता द्वारा लगाए बगीचे में जाकर आम तोड़कर खाएगा और कब अपनी माँ के हृदय से लग कर उसके हृदय को प्रसन्नता से भरेगा। बगीचे से घर लौटकर अपने पिता की लकड़ी को खिलौना बनाकर खेलेगा।

लोरी का एक अन्य उदाहरण जिसमें मनुहार करके गीत गाकर पुत्र को खाना खिलाने का सुन्दर वर्णन है –

ताई–ताई पुरिया

धिउ से चुपरिया (चभोरिया)

भइया के मुँह के धुटूक

बच्चा माँगे खिचड़ी

कबूतर माँगे दाना

माई दौरी–दौरी जाय

लावे भड़–भुजे से दाना

भइया के मुँह में धुटूक[3]

लोरी की पंक्तियों में माँ का पुत्र के प्रति अनन्य स्नेह को बड़ी मोहकता के साथ प्रस्तुत किया है।

'अंधेरे के दीप' उपन्यास दहेज हत्या पर केन्द्रित है। दहेज के अभाव में बेटी के विवाह में मुश्किल आती है, विद्या जी ने गीत के द्वारा कुंवारी कन्या के पिता की बेबसी व लाचारी का मार्मिक चित्र उकेरा है।

नीर चुवत बाबा नीर चुवत है, नीर चुवै आधीरात,

ऐसे बबइया कैसे नींद परतु है, जेहि धर करिना कुँवारि।[4]

अर्थात् जिस घर में कुँवारी लड़की होती है, उसके पिता की आँखे नींद के स्थान पर चिंता के आँसू से भरी होती है।

माँ के ह्रदय की पीड़ा, उसके मनोभावों को 'सोहर' में मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है –

जइसे कोहरवा का ओंवा त भभकि–भभकि बरै हो,

राम! वैसे माई को करेजवा त भभकि–भभकि बरै हो,[5]

लोकगीतों की विशेषता है कि यह मानव जीवन की विविध अवसरों पर गाए जाते है जैसे– संतान जन्म, विवाह, ऋतु परिवर्तन, मेले, व्रत। दूसरे शब्दों में जीवन के प्रत्येक पक्ष की अभिव्यक्ति लोकगीतों से होती है। विद्या जी अनूठे अंदाज में गुलाबों भौजी द्वारा कजली के माध्यम से झूले वाले को झूला रोकने की विनती करती है।

''झूला बंद करो बनवारी', हम घर मारी जइबे ना।''[6]

इसी प्रकार साड़ी के रंग पर गुलाबों भौजी कजली छेड़ कर कहती हैं।

''हरे रामा परिगै गुलाबी रंग पागि, छोडाए ना छुटे रे हरी।''[7]

गुलाबों भौजी कहती है यदि गुलाबी रंग की साड़ी पर दूसरा रंग चढ़ जाए तो प्रयास करने पर भी नहीं छूटता।

विद्या जी के साहित्य में वैवाहिक गीतों की भरमार है। वैवाहिक रीतियों का श्री गणेश और पूर्णता लोकगीतों से होती है। यही कारण है कि विवाह के मांगलिक अवसर को सफल बनाने में लोकगीत वेद मंत्रों की भूमिका निभाते हैं।

गाँवों में सजे–धजे दुल्हे और सुशोभित बरात के आगमन की सूचना से लेकर जनवासे की व्यवस्था, बरात उतराई का दृश्य लोक गीतों में साकार हो उठता है –

साँकरि खेरिया बहारा हो अमुक राम, आई गए दुलरू दामादा
सँकरा मोहरा है तुहरा अमुक राम, हथिया न लैय पैठार।
की दल उतरैं आम अमिलि तराँ, की हो कदम जुड़ छाँह।
की दल उतरैं अमुक राम दुअरवाँ, कि जोहि घर कन्या कुवाँरि।[8]

गीत का भाव है – बाबा! दुलारे दामाद आ रहे है। गलियाँ बुहार दो। सँकरे द्वार में हाथी प्रवेश नहीं कर पायेगें। बरात आम, इमली, कदम की छाया में उतरेगी या भाई के द्वार पर।

उपन्यास में अगवानी के पश्चात् तोरण द्वार पर दूल्हे के स्वागत में अक्षत, सुपारी का बीड़ा डालकर, गाये जाने वाले मांगलिक गीत की मोहकता के साथ प्रस्तुत किया है। इसके अलावा वैवाहिक संस्कार की रोचकता बढ़ाने के लिए हास परिहास व बरातियों के रूप सौन्दर्य पर व्यंग्य को अनूठे रूप से रूपांकन किया है–

बराती एक्कौं मनै कै नाहीं।

वहि रे कोंहरवा के पूत, बराती एक्कौ मनै कै नाहीं।

वहि रे बरतियन कै लंबी–लंबी टँगिया

वै तौ सरसवा कै जन्मा बराती एक्कौ मनै कै नाहीं।

वहि रे बरतियन कै नान्हीं–नान्हीं अँखिया

वै तौ कुचकुचवा (उल्लू) कै जन्मा बराती एक्कौ, मनै कै नाहीं।[9]

गीत का भाव है कि एक भी बराती का (शारीरिक गठन) मन को भाने वाला नहीं है। बरातियों की सारस के समान लंबी–लंबी टाँगे और उल्लू की तरह छोटी–छोटी आँखे है।

जिस प्रकार वर का जनवासे एवं तोरण द्वार पर उत्साह व प्रसन्नता के साथ स्वागत का सुन्दर चित्रण हुआ है, उसी तरह नव–वधु के स्वागत में मंगल कामना स्वरूप गाया जाने वाला परछन गीत विवाह संस्कार की रोचकता को बढ़ाता है।

आरती ल्या बहुअरि, आरती ल्या आरती सपूरन होय,

धेरिया जे परलीं सजन धराँ, अब बाबा सौवें सुख नींन।

कलसा ल्या बहुअरि, कलसा ल्या, कलसा सपूरन होय,

धेरिया जे परली सजन धराँ, अब बाबा सौवें सुख नींन।

सुपवा ल्या बहुअरि, सुपवा ल्या, सुपवा सपूरन होय,

धेरिया जे परलीं सजन धराँ, अब बाबा सौवें सुख नींन।[10]

विद्या जी के उपन्यासों की विशेषता है कि वे यथा स्थान लोकगीतों क समावेश कर लोकरंजकता को बढ़ाती है साथ ही सुधी पाठक को आत्मीय धागों से बाँधती है। पाठक भी स्वयं को कथा से जोड़ता हुआ पात्र के हर्षित क्षणों में आनंदित होता है और उनके दुःख में वेदना महसूस करता है। ऐसा ही क्षण, जब फूलकली विदा होकर हर्ष व करूणा की सम्मिश्रित मनोभावों के साथ ससुराल पहुँचती है, जहाँ घरेलू उपकरणों को उसके सुख–दुःख का साथी बताकर स्वागत गीत गाया जाता है, तो पाठक के हृदय में भी सम्मिश्रित भाव उत्पन्न होते हैं।

उपन्यासों में स्थान–स्थान पर वर्णित लोकगीतों के माध्यम से कहीं लेखिका की आधुनिक सोच के दर्शन होते हैं, कहीं विवाह संस्था के प्रति उनका घनिष्ठ लगाव व्यक्त होता है।

'फूलकली' उपन्यास में नायिका को पहले पति द्वारा त्यागने के पश्चात् भी वह विवाह में गहरी आस्था रखती है। यह संस्कार भी उसे लोकगीतों से मिले हैं जिसे लेखिका ने सहजता से उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

सासू–ननदि, भइया, बाबा गरियइ हैं, सहि लिह्यू माथ नवाय।

लै लिह्यू अँचरा पसारि।

दालि चाउर बेटी! बिनि चुनि धरिउ, अदहन दिह्यू बिचारि।

माड़ पसावत सासूके बोलायू, राखिऊ ननद जिठानी क मान।[11]

भाव है– बाबा भइया विदाई के समय कहते हैं कि राम–रसोई सीख लेना सास–ननद ताना मारे तो उनके सम्मुख माथा नवाना अर्थात् प्रत्येक बात को मान देना तुम्हारा कर्त्तव्य हैं। घर के कार्यों को कुशलतापूर्वक करना और जिठानी को मान देना।

महिलाओं के मधुर कंठ से निःसृत स्वर लहरियाँ मांगलिकता की प्रतीक है साथ ही नारी मन की उन उमंगों को भी प्रकट करती है, जो कहने में वे संकोच करती है।

विद्या जी के उपन्यासों में जहाँ विविध लोकगीतों का प्रसंगानुकूल हास व्यंग्य, वेदना, हर्ष, बाल मनुहार के गीतों का अंकन हुआ है, साथ ही मौज–मस्ती वाले 'बिरहा' गीत भी हैं जिनका उद्देश्य काम का बोझ कम कर मनोरंजन करना और ताजगी व ऊर्जा से पुनः काम में जुट जाना है –

''धोबी क चाही चार मेहरिया, एक घर का एक घाट,

एक मेहरिया रोटी पकावै, एक बिछावै खाट।''[12]

धोबी काम की अधिकता से चार पत्नीयों की कामना में बिरहा गाकर प्रसन्न भाव में कर्मरत रहता है।

वस्तुतः– लोकगीतों में जीवन की रीतियों, परम्पराओं, वेदना, परिहास गीतों की बूंदे ओसकणों की भाँति नैसर्गिक, स्वच्छ व उज्जवल होती हैं जिनमें किसी प्रकार की मिलावट सम्भव नहीं है। लोकगीत, लोकसाहित्य के खजाने के वे मणि–माणिक्य है जिनकी चमक भावी पीढ़ी को मार्गदर्शित करती है।

सन्दर्भ सूची –

1 हिन्द का प्रादेशिक लोक साहित्य शास्त्र, डॉ. नन्दलाल कल्ला, राजस्थानी ग्रंथासार, 2018, पृ.सं.–267

2 नीरमती, विद्या बिन्दु सिंह, ज्ञान गंगा, 2010, पृ.सं.–114–115

3 हिरण्यगर्भा, शिवपुर की गंगा भौजी, विद्या बिन्दु सिंह, पृ.सं.–77

4 हिरण्यगर्भा, अँधेरे के दीप, विद्या बिन्दु सिंह, ग्रंथ अकादमी, 2015, पृ.सं. –55

5 नीरमती, विद्या बिन्दु सिंह, ज्ञान गंगा, 2010, पृ.सं.–86

6 हिरण्यगर्भा, अँधेरे के दीप, विद्या बिन्दु सिंह, ग्रंथ अकादमी, 2015, पृ.सं. –36

7 वही, पृ.सं.–35

8 हिरण्यगर्भा, फूलकली, विद्या बिन्दु सिंह, ग्रंथ अकादमी, 2015, पृ.सं.–153

9 वही, पृ.सं.–154

10 हिरण्यगर्भा, शिवपुर की गंगा भौजी, विद्या बिन्दु सिंह, ग्रंथ अकादमी, 2015, पृ.सं.–93

11 हिरण्यगर्भा, फूलकली, विद्या बिन्दु सिंह, ग्रंथ अकादमी, 2015, पृ.सं.–158

12 हिरण्यगर्भा, शिवपुर की गंगा भौजी, विद्या बिन्दु सिंह, ग्रंथ अकादमी, 2015, पृ.सं.–107